Reg No 177/2008-2009 ISSN: 2322–0317

PSSH PERSPECTIVE of SOCIAL SCIENCES and HUMANITIES

An International Multidisciplinary Refereed Research Journal

VOL 2, NO 2

JULY - DECEMBER 201

Biannual

Editor

Dr Hemant Kumar Singh

Assistant Professor

Economics Department

Madan Mohan Malviya PG College

Deoria (UP)

Publisher

Herambh Welfare Society

Varanasi (India)

महाकवि कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम में नीतितत्व

प्रिया सिंह[1]

कालिदास की दीर्घ सांसारिक अनुभूतियों तथा लोकव्यवहार की गाढ़ प्रवीणता का परिचय हमें उनके नाटकों से मिलता है। कालिदास की काव्य सरस्वती का सर्वोत्कृष्ट प्रसाद 'अभिज्ञानशाकुन्तल' है। ''शाकुन्तल'' का चित्रपट अत्यन्त व्यापक तथा समृद्ध है। एक नव–प्रस्फुटित–यौवना प्रकृति किशोरी है जो आश्रमस्थ लता वीरूधों की सेवा परिचर्या करती है यह कथानक का आरम्भ बिन्दु है। वह किशोरी अन्ततः राजमहिषी बन जाती है– यह कथानक का पर्यवसान बिन्दु है। किन्तु इन दोनों बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा अत्यन्त कुटिल हो गई हैं, और इस कौटिल्य की आड़ में कवि को अपने प्रबुद्ध संवित् के समग्र स्वरूपों की विवृत्ति का मनोरम संयोग प्राप्त हुआ है।

कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञान–शाकुन्तलम्।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कों यत्र याति शकुन्तला।।

कवि–कुल–कुमुद–कलाधर कालिदास सरस्वती देवी की देदीप्यमान मणि–माला के मध्यमणि (सुमेर) हैं। नाट्यकला की सुन्दरता निरखिए या महाकाव्य की वर्णन छटा देखिये अथवा गीति काव्य के सरस करूण हृदयोंद्गारों को पढ़ियें, कालिदास में वह आश्चर्य जनक चमत्कार है जो विश्व को चकाचौंध कर रहा है, ऐसी ब्रह्माण्ड व्यापिनी सर्वातिशायिनी प्रतिभा है जिसका एकत्र समागम संसार में दुष्प्राप्य है। उनके काव्य ऐसे आध्यात्मिक रहस्य से भरे हुए हैं– जिनका इतना सरस प्रतिपादन दुर्लभ है। उनकी कविता शान्तिदायी उपदेश की वह कौमुदी है जो जिज्ञासु जन के जिज्ञासातप्त चित्त को चिरस्थायी आनन्द सागर की तरंगों में डुबो देती है। धन्य है कालिदास और धन्य है उनकी कविता।

महाकवि बाणभट्ट ने कालिदास के विषय में क्या ही उपयुक्त लिखा है–

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु
प्रीतिर्मधुरसान्द्रास म°रीष्विव जायते।।[2]

आशय है कि रस से भरी मधुरिमा में पगी हुई कालिदास की सूक्ति में म°ारी के समान किसके हृदय में आनन्द का उद्रेक नहीं होता? प्रसन्न राघवकार जयदेव ने कालिदास को 'कविकुल गुरू' की उपाधि ही अर्पण कर डाली है।

भासो हासः कविकुलगुरूः कालिदासो विलासः।

---

1 शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विविश्वविद्यालय
2 हर्षचरित, 16 श्लोक।

केषां नैषा कथय कविता – कामिनी कौतुकाय।।[1]

कालिदास की अद्वितीयता के विषय में किसी आलोचक की उत्प्रेक्षा के माध्यम से यह मार्मिक उक्ति है–

पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाऽधिष्ठित कालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव।।

आशय है कि प्राचीन काल में कवियों की गणना आरम्भ हुई तो सर्वप्रथम स्थान कालिदास को दिया गया। कालिदास का नाम कनिष्ठिका पर रखा गया। अनन्तर यह विचार होने लगा कि द्वितीय स्थान किये दिया जाय परन्तु वैसे कवि के न होने से दूसरी अंगुली पर किसी का नाम पड़ा ही नहीं। अतएव कनिष्ठिका के समीप की अंगुली का नाम 'अनामिका' वास्तव में सार्थक हुआ क्योंकि उस पर किसी का नाम पड़ ही न सका वह बिना नाम की ही रह गयी। यहाँ कालिदास की सर्वश्रेष्ठता कितनी औचित्यपूर्ण ढंग से प्रदर्शित की गयी है?

आज महाकवि कालिदास को सम्पूर्ण विश्व में जो एक रमणीय स्थान प्राप्त है। उसमें ''अभिज्ञानशाकुन्तल'' का बहुमूल्य योगदान है। अभिज्ञानशाकुन्तल संस्कृत साहित्य की ही नहीं अपितु विश्व साहित्य की अमूल्य निधि है। पाश्चात्य विद्वानों को संस्कृत–साहित्य के प्रति उन्मुख करने का श्रेय शाकुन्तल को ही है। विद्वन्मण्डली काव्य में नाटक को रमणीय मानती है और नाटक में भी 'अभिज्ञान शाकुन्तल' को सर्वश्रेष्ठ स्थान पर प्रतिष्ठित करती है,

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टम्।।

अभिज्ञानशाकुन्तल में कविकुलगुरू कालिदास की कविता– कामिनी की कमनीय कान्ति से उद्भासित नीति परक तत्त्व किस सहृदय को दोलायमान नहीं करती?

'नीति' शब्द का प्रयोग अनेक विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। शुक्रनीति और कामन्दकीय नीतिसार के अनुसार 'नीति' शब्द नय् (ले चलने का कार्य) धातु से बना है, जिसका अर्थ है समाज और व्यक्ति को कुमार्ग से सन्मार्ग की ओर ले जाना।

अभिज्ञानशाकुन्तल में वर्णित नीति का सम्बन्ध राजनीति के साथ–साथ सामान्य नीति से भी है। राजनीति में राजा और शासन व्यवस्था से सम्बद्ध नीति का समावेश होता है जबकि समान्य नीति में नैतिक एवं मानवोचित आचरण आता है। इसमें वर्णित नीति तत्वों के अन्तर्गत अनेक नैतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। नैतिकता एक व्यापक शब्द है। वास्तव में नैतिकता नियमों का वह समूह है जो मानव को इस बात का बोध कराता है कि मानव व्यावहार में कौन–कौन से कार्य उचित हैं और कौन–कौन से अनुचित? नैतिकता व्यक्ति को अच्छे कार्य करने की प्रेरणा देती है और इसी कारण व्यक्ति सद्कार्य करने की ओर प्रवृत्त होता है। नैतिकता एक साधन है, जिससे व्यक्ति समाज के अनुकूल कार्य करने को बाध्य होता है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है–

[1] प्रसन्नराघव 1.22।

''नैतिकता एक ऐसी अन्तःक्रिया का नाम है जिसमें प्रेम, स्नेह की आंधी चलती है, सहिष्णुता का सागर लहराता है और परोपकार का सूर्य आलोकित होता है।''

डेविस के शब्दों में ''नैतिकता कर्त्तव्य की भावना है अर्थात् यह उचित और अनुचित पर बल देती है।''[1]

अतः नैतिकता उन नियमों और सिद्धान्तों का नाम है जिसका सम्बन्ध हमारे अन्तःकरण से होता है। सामान्यतः वे नियम ही नैतिकता के अन्तर्गत आते हें जो हमारे चरित्र व आचरण से सम्बन्धित होते है और जिन्हें समाज की सहमति प्राप्त होती है। आपद्– विपद् के समय किंकर्त्तव्यविमूढावस्था में ये नीतिपरक तत्त्व सुहृद् सा आलम्बन प्रदान करते हैं।

नैतिक सिद्धान्त सत्यता, ईमानदारी पवित्रता, शिष्टाचार, परोपकार, श्रद्धा कर्तव्यनिष्ठा दयालुता, क्विम्रता, सज्जनो का सत्कार, सच्चरिता, सरलता, उदारता, शौर्य, शिष्टभाषी आदि की भावना पर आधारित होते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल में ये भावनाएँ स्पष्ट रूप से प्रतिभासित होती हैं। राजा के रूप में वर्णाश्रम धर्म की रक्षा दुष्यन्त अपना पावन कर्त्तव्य समझता है। मृगया का अनुरागी होते हुए भी, ज्यों ही उसके कानों में यह ध्वनि सुनाई पड़ती है कि ''राजन आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः''[2] त्योंही वह बाण उतार देता है क्योंकि उसके शस्त्र पीड़ितों के परित्राण के लिए है निरपराधों के प्रहार के लिए नहीं। ऋषि–मुनियों के प्रति उसके हृदय में असीम श्रद्धा है और इसलिए वह कण्व के पावन आश्रम के दर्शन से अपने को भी पुनीत बनाने का अभिलाषी है।

''पुण्याश्रमदर्शनेन् तावदात्मानं पुनीमहे।[3]

एक पराक्रमी राजा होते हुए भी वह अतिविनम्र एवं आत्मश्लाघारहित है। सप्तम् अङ्क में मातलि की प्रशंसा पर वे कहते हैं 'शत्रु पर विजय का श्रेय मुझे नहीं यह सब मैंने तो इन्द्र के प्रभाव से ही किया है। वीतरागी तपस्वियों के प्रति उसके हृदय में समादर तथा विनयशीलता दोनों है। आश्रम में विनीत वेष धारण कर प्रवेश करना ही उन्हें मर्यादित दिखलायी देता है – ''विनीतवेषेण प्रवेष्ट्व्यानि तपोवनानि।''[4]

व्यवस्था पालन के साथ–साथ प्रजा वात्सल्य दुष्यन्त चरित्र का दूसरा नियामक तत्व है। कान्ता–विश्लेष के अवसाद से अभिभूत होने की अवस्था में भी वह अमात्य को यह आदेश प्रषित करता है कि ''देर से जगने के कारण मैं आज धर्मासन पर बैठने के लिए सभाभवन में उपस्थित नहीं हो सकता हूँ, अतएव जो कुछ भी राज्य कार्य हो, उसे पत्र द्वारा मेरे पास लिखकर भेज दें। समुद्र व्यापारी धनमित्र के निस्संतान मरने पर वह अमात्य के इस निर्देश की अवमानना करता है कि उसका सम्पूर्ण अर्थसंचय राजकोष में चला आना

---

[1] समाजशास्त्र

[2] अभि0 पृ0 28, मालवीय सुधाकर (व्याख्याकार)

3 अभि0 पृ0 35, मा0सु0

4 अभि0 पृ0 40 मा0सु0

चाहिए और यह आदेश देता है कि सेठजी की एक पत्नी गर्भवती है, उससे उत्पन्न होने वाला बालक ही इस धन का अधिकारी होगा।

प्रजाजन के प्रति उनका सहज एवं वात्सल्य पूर्ण प्रेम उस समय पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है जब वे अपने को सन्तानहीन प्रजाजन का आत्मीयजन घोषित करवाते है।

येन येन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना।[1]
स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम्।

राजा दुष्यन्त गम्भीरता, सत्यनिष्ठा और आत्मनियमन के महान् गुण से विभूषित है। शार्ंरव की कटूक्तियों से उसके पद पर आसीन कोई भी व्यक्ति विचलित एवं विक्षुब्ध हो सकता था। लेकिन दुष्यन्त ने जिस प्रकार उन व्यंय प्रहारों को सहन किया है, वह निश्चयमेव प्रशंसनीय है। उसके चरित्र के कठोर आत्म संयम की प्रतीति तब होती है जब एक असाधारण रूपशालिनी तरूणी उससे पत्नी रूप में स्वीकार किये जाने की प्रार्थना करती है। ऋषि भी यही तर्क देते हैं कि उसे स्वीकार करना उचित है और तब भी दुष्यन्त का आत्मसंयमी मन डिगता नहीं है। उसके इस दृढ व्रत को देखकर कंचुकी विस्मित हो उठा है–

''अहो धर्मापेक्षिता भर्त्तुः। ईदृशं नाम सुखोपनतं रूपं प्रेक्ष्य कोऽन्यो विचारयति'' इस विचित्र अवस्था में उसका अन्तर्द्वन्द्व कितना तीव्र एवं मार्मिक था। यह उसकी इस उक्ति से स्पष्ट हो जाता है।

इममुपनतमेवं रूपमक्लिष्टकान्ति।
प्रथमपरिगृहीतं स्यान्नवेतिव्यवस्यन्।
भ्रूमरे इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारं
न च खलु परिभोक्तुं नैव शक्नोमि हातुम्।।[2]

अर्थात्

मैं ठीक–ठीक निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि अपने आप यहाँ उपस्थित हुई सुन्दरी के साथ मैंने पहले कभी विवाह किया है या नहीं। इसीलिए जैसे प्रातःकाल की ओस पड़े हुए कुन्द के फूल पर भौरा न बैठता ही है, न उसे छोड़कर जाता ही है, वैसे ही मैं भी न इसे ग्रहण ही कर पा रहा हूँ और न छोड़ ही पा रहा हूँ।''

इन मनः स्थिति में मूलतत्त्व है, राजा की धर्म–भीरूता। यदि शकुन्तला उसकी परिणीता वधू है तो उसे वह स्वीकार होना चाहिए और यदि वह केवल छल भाषण कर रही है तो केवल उसके सौन्दर्य के कारण उसे स्वीकार करना पाप ही होगा। धर्म भावना को यदि महत्व न दिया जाय तो भी इस आन्तरिक द्वन्द्व को कर्त्तव्य की उस भावना का प्रतीक समझा जायेगा जो मानव संस्कृति का प्रमुख तत्त्व हैं

दुष्यन्तः प्रणय भी वर्णाश्रम धर्म की मर्यादाओं से बँधा हुआ है। शुकुन्तला को देखकर उसे यही संदेह होता है कि क्या ऋषि की यह कन्या किसी दूसरे वर्ण की स्त्री से तो उत्पन्न नही है ''अपि नाम

1 अभि0 6/25 मा0 सु0
2 अभि0 शा0 5/19, दानपति तिवारी (व्याख्याकार)

कुलपतेरियमसवर्णक्षेत्रसम्भवाभवेत्।। लेकिन उसका तर्क है कि उसका विवाह क्षत्रिय से हो सकता हे, क्योंकि सन्दिग्ध अवस्थाओं में सज्जनों के अन्तःकरण की नैसर्गिक प्रवृत्तियाँ ही प्रामाण्य मानी जानी चाहिए।

''असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि में मनः।
सतां हि संदेह पदेषु वस्तुषु प्रमाणन्तःकरणप्रवृत्तयः।[1]

शकुन्तला के कुल–शील का सही–सही परिचय प्राप्त करने के लिए दुष्यन्त सचेष्ट है। उसके जन्म का वृत्तान्त अनुसूया से सुनकर और यह जानकर भी कि शकुन्तला का उससे परिणय हो सकता है, दुष्यन्त की द्विविधा पूरी तरह दूर नही होती। अभी भी उसके मन में सन्देह है कि क्या शकुन्तला का विवाह होगा भी या नही?

प्रियंवदा के यह कहने पर कि अनुरूप वर मिलने पर पिताजी उसका विवाह कर देंगे, दुष्यन्त पूर्ण आश्वस्त हो जाता है कि अब शकुन्तला के प्रणय निवेदन करने में कोई नैतिक अवरोध नहीं हैं। इस प्रकार शकुन्तला उसके लिए ग्राह्य है अथवा नहीं इसके निश्चय के लिए राजा अपनी अन्तःप्रवृत्तियों पर नियन्त्रण रखता हुआ कितनी निष्ठा और ईमानदारी के साथ यत्न करता है।

जब उससे शकुन्तला को ग्रहण करने की बात कही जाती है, तब वह ''अनिर्वर्णनीय परकलत्रम्'', ''कुतोऽयमसत्कल्पनाप्रश्नः'' ''अनार्यः परदारव्यवहारः'' (परायी स्त्री पर आँख नही डालनी चाहिए, यह कहाँ का असत् कल्पना वाला प्रश्न है, अन्य की स्त्री के साथ संसर्ग आर्योचित नही है।) इत्यादि तर्क प्रस्तुत करता है। शार्ंरव जैसा खरी टीका करने वाला ऋषि कुमार भी यह स्वीकार करता है कि –

''महाभागः कामं नरपतिरभिन्नस्थितिरसौ,
न कश्चिद् वर्णानामपथमपकृष्टोऽपि भजते।''[2]

अर्थात् यह राजा कभी अपनी मर्यादा का त्याग नहीं करता। इसके राज्य में रहने वाला कोई प्रजाजन किसी प्रकार का अधर्म अथवा अनाचार नही करता। वैतालिकों की यह प्रशस्ति अतिर°ना अथवा चाटुकारिता नहीं है अपितु वास्तविक तथ्य है–

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्।।[3]

आशय है कि अपने सुख की इच्छा छोड़कर आप प्रजा की भलाई में लगे रहते हैं। एक प्रकार से आप धर्म ही पाल रहे हैं, क्योंकि वृक्ष अपने सिर पर तो कडी धूप सहता है किन्तु तले में बैठे जीवों का परिताप अपनी शीतल

[1] अभि0 1/23, मा0सु0
[2] अभि0 5/11, मा0 सु0
[3] अभि0 5/6, मा0सु0

छाया से दूर करता है। दुष्टों को आप अपने राजदण्ड से नियन्त्रित रखते हैं और लोगों के पारस्परिक विवादों को मिटाकर प्रजा की रक्षा करते हैं।

यद्यपि विवाह की सुधि न होने से उसका हृदय शकुन्तला को ग्रहण करने अथवा न करने रूपी कर्तव्याकर्त्तव्य की भावना से आक्रान्त रहता है। लेकिन अँगूठी मिलने के साथ ही दुष्यन्त को शकुन्तला की स्मृति हो जाती है और तब उसका वियोगी रूप हमारे सामने उद्घाटित होता है। अब वह पश्चाताप की अग्नि में दग्ध हो रहा हैं।

शकुन्तला में भी बड़ों के प्रति आदर का भाव विद्यमान है जब काम सतप्त राजा कहते है कि ''कहो मैं क्या सेवा करूँ? नलिनीदल से पंखा झलूँ या पाद संवहन करूँ?'' तो शकुन्तला कहती है – आप जैसे माननीय पुरूष के प्रति अपने को अपराधिनी नही बनाऊँगी– ''न माननीयेषु जनेषु आत्मानमपराधयिष्यामि''[1] जब शार्रव डाटते हुए कहता है 'आः पुरोभागिनी! 'किमिदं स्वातन्×यमवलम्बसे' तब वह डरकर कॉपने लगती हैं। वह आगे इसलिए नहीं बढ़ती है कि पूज्य का अपमान होगा।

शकुन्तला के व्यक्तित्त्व में संकोच लज्जा और विनयशीलता के साथ–साथ स्वाभिमान भी हैं दुष्यन्त के राजभवन में उपस्थित होने पर जब उसके प्रेम की अवहेलना होता है, तब यही सरल बाला कितनी क्रुद्ध हो जाती हैं? पहले तो बड़ी शालीनता एवं धैर्य से राजा के व्यंग्यपूर्ण वचनों को सुनती हैं? जब दुष्यन्त यह कहता है कि अपना कार्य सिद्ध करने वाली स्त्रियों की झूठी किन्तु मधुर बातों में विषयी लोग ही फँसते हैं। तब भी शकुन्तला अपने उद्वेगशील भावनाओं को नियन्त्रित किए हुए हैं। गौतमी के यह प्रतिवाद करने पर कि हे महाभाग! आपको ऐसा कथन शोभा नहीं देता क्योंकि तपोवन में पली कन्या छल कपट की बात क्या जानती है– ''तपोवन सवंर्धितोऽनभिज्ञोऽयं जनः कैतवस्य''।[2] इस प्रकार जब अन्य युक्तियों से भी राजा सन्तुष्ट नहीं हो पाने और आक्षेप करते ही रहते हैं तब भी वह सहती रहती है पर ज्यों ही वह–

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीणां
संदृश्यते किमुत याः परिबोधवत्यः।
प्रागन्तरिक्षगमनात् स्वमपत्यजात –
मन्यैर्द्विजैः परभृताः किल पोषयन्ति।।[3]

कहकर समस्त स्त्री जाति को अपने दोषारोपण का निशाना बनाते हैं तब उसका स्वाभिमान वाचाल हो जाता है और वह रोषपूर्वक दुष्यन्त को नीच तथा अनार्य तक कह डालती है। उसके संतप्त एवं प्रताड़ित हृदय के क्या उद्गार हैं!

''अनार्य, आत्मनो हृदयानुमानेन किल सर्व प्रेक्षसेः को नाम अन्योधर्मक[ाकव्यप्देशिनस्तृणच्छन्न कूपोपमस्य तवानुकारी भविष्यति।

सुष्ठु तावदत्र स्वच्छन्दचारिणी कृताऽस्मि याऽहमस्य पुरूवंशप्रत्ययेनमुख

---

[1] अभि0 पृ0 202, मा0सु0
[2] अभि0 पृ0 403, मा0सु0
[3] अभि0 5/23, मा0सु0

मधोर्हृदयस्थितिविषस्य हस्ताभ्याशमुपगता।''[1]

अनार्यः तुम सबके हृदय को अपने ही हृदय के समान खोटा समझते हो। तुम्हें छोडकर और कौन ऐसा नीच होगा जो घास–फूस से ढ़ँके हुए कूप के समान धर्म का दोंग रचकर ऐसा नीच काम करेगा।

तुमने अच्छा ही किया जो मुझे कुचाली स्त्री तक बना दिया क्योंकि पुरूवंश जैसे ऊँचे कुल के धोखे में आकर मैं ऐसे नीच के हाथों में जा पड़ी जिसके मुँह में मधु और हृदय में विष भरा हुआ है।''

शकुन्तला का यह रूप हमें चकित नहीं करता क्योंकि हिन्दू रमणी का आदर्श रूप यही है।

अन्तिम अंक में शकुन्तला पति वियोग के कारण मालिन वस्त्र तथा एक वेणी धारण करने वाली व्रतोपवासादि से शरीर सुखा देने वाली शुद्धशीला, पतिपरायणा, पुत्रवत्सला प्रौढ़ा नारी के रूप में परिणत दिखाई पड़ती है– ''वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः।[2]

महर्षि कण्व का शकुन्तला के प्रति पुत्री वात्सल्य रूप सम्पूर्ण संसारी पिताओं के लिए प्रेरणा का अजस्त्र स्रोत है। वह शकुन्तला को अपनी पुत्री के समान मानते और प्यार करते हैं। उसके दैव की शान्ति के लिए नाटकारम्भ में सोमतीर्थ गए हुए हैं। चौथे अ¯ में उनके वात्सल्य की कुल्या बड़े वेग एवं गहराई से फूट पड़ी है। शकुन्तला की विदाई के मय वे अत्यन्त विह्वल हो गए हैं और सम्पूर्ण संसारी पिताओं के प्रतिनिधि बन गए हैं। शकुन्तला की विदाई के अवसर पर वे जो उपदेश शकुन्तला को देते हैं वह एक आदर्श उपदेश है। उसमें भारतीयता की झलक दिखलाई पड़ती है। वे कहते हैं –

शुश्रूषस्व गुरून् कुरू प्रियसखी वृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।।[3]

अर्थात श्वसुर गृह में जो बड़े लोग हों उनकी सेवा करना वधू का भाव होना चाहिए। सपत्नियों के साथ सखियों के समान व्यवहार करना चाहिए। पति अपमान भी करे तो झगड़ा न करें। सेवकों के साथ उदारता का व्यवहार करना और समृद्धि पाकर अभिमान न करें।

शकुन्तला को जो उपदेश उन्होंने दिए हैं, वे आज भी हिन्दू पिताओं द्वारा बालिकाओं को दिए जाते हैं और इसे पति गृह भेज कर जो महान् संतोष उन्हें हुआ है, वह प्रत्येक भारतीय पिता की भावना को सही–सही मुखरित करता है–

''अर्थो हि कन्या परकीय एव
तामद्य सम्पेष्य परिग्रहीतुः।
जातोऽस्मि सद्यो विशदान्तरात्मा।

---

[1] अभि0 पृ0 376, 384, मा0सु0
[2] अभि0 7/21, मा0सु0
[3] अभि0 4/20, मा0सु0

चिरस्य निक्षेपमिवार्पयित्वा।।[1]

भाव यह है कि भारतीय परम्परा में कन्या को परकीय द्रव्य के रूप में स्वीकार किया गया है। यह एक धरोहर होती है उसे पति के घर भेजना ही मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य होता है और इसी से अन्तरात्मा की शान्ति मिलती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अभिज्ञानशाकुन्तल में राजा का प्रजा के प्रति और प्रजा का राजा के प्रति कर्तव्यों, मर्यादाओं के साथ–साथ लोक व्यावहार संबंधित नैतिकताओं का अद्वितीय संचय प्राप्त हाता है।

इस प्रकार इसमें सामान्य नीति (लोक व्यवहार) और राजनीति दोनों का ही सम्यक् सम्मिलन प्राप्त होता हैं इसमें उद्धृत उदात्त नैतिक मूल्य बोध हमारी सांस्कृतिक वैभव के परिचायक है। इसमें वर्णित नीतितत्त्वों का सुन्दर पुट सभी मनुष्यों का उपजीवक है तथा लोकस्थिति का व्यवस्थापक है। वर्तमान परिपेक्ष्य में देखा जाए तो इन नीतियों का अत्यधिक महत्व है नीति के अभाव में सम्पूर्ण विश्व व्यवहार सम्पन्न नहीं कर सकते। नीति के अभाव में व्यवहार के न होने से विश्व में अक्रामक अनैतिक वातारण का प्रादुर्भाव हो जाएगा और सम्पूर्ण विश्व अराजकता की कोटि में आ जाएगा। अतः महाकवि कालदिास ने इस अनमोल ग्रन्थ के माध्यम से नीतितत्त्व रूपी जो अमूल्य रत्न प्रदान किए हैं, वर्तमान समय में उन पर अमल करना आत्यावश्यक है।

सन्दर्भ सूची :

1. नीतिशतक, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1999।
2. नीतिशतक, व्याख्याकार डॉ0 बलवानसिंह यादव, चौखम्बा संस्कृत भवन, सर्वाधिकार प्रकाशनकाधीन संस्करण : प्रथम वि0सं0 2065
3. समाजशास्त्र
4. अभिानशाकुन्तमलम्,–चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी। संस्करण– पुनर्मुद्रित, वि0स0 2056 सन् 2008, व्याख्याकार डॉ0मा0सु0
5. अभिज्ञानशाकुन्तमल्, डॉ0 महराजदीन पाण्डेय और डॉ0 दानपति तिवारी (व्याख्याकार), भवदीय प्रकाशन, श्रृंगारघाट, अयोध्या (फैजाबाद)
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, दशम संस्करण
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास– उमाशंकर शर्मा ऋषि, चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, पुनर्मुदित 2012।
8. महाकवि कालिदास, डॉ0 प्रभुदयाल अग्निहोत्री, ईस्टर्न बुक लिंकर्स दिल्ली, प्रथम संस्करण 1998।
9. महाकवि कालिदास डॉ0 रमाशंकर तिवारी, चौखम्बा विद्यामभवन, पØाम संस्करण 1988
10. संस्कृतसुकवि– समीक्षा, बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन, तृतीय संस्करण 1987

संक्षेपाक्षर सूची :

1. अभि0– अभिज्ञानशाकुन्तल
2. मा0सु0– मालवीय सुधाकर (व्याख्याकार)

[1] अभि0 4/24, मा0सु0